International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

महाकाव्य का स्वरूप निर्धारित करने वाले आवश्यक तत्व

डॉ दीपा जोशी

प्रवक्ता संस्कृत, डायट, बागेश्वर

प्रतिपाद्य विषय 'महाकाव्य का स्वरूप' पर विस्तृत विवेचन से पूर्व 'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में जानते हैं। साहित्य की सर्वमान्य रूप से व्युत्पत्ति है– 'सहितस्य भावः साहित्यम्' यहाँ पर 'गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः कर्माणि च' से ष्यञ् प्रत्यय होकर 'साहित्य' शब्द बना है। 'साहित्यस्य कर्म साहित्यम्' के अनुसार कवि कर्म रूप साहित्य के अन्दर सम्पूर्ण वाङ्मय का अन्तर्भाव हो जाता है। 'हितेन सह सहितं तस्य भावः साहित्यम्' इस उत्पत्ति का आश्रय लेकर ही सम्भवतः काव्य निर्माण का एक प्रयोजन रहा है। 'शब्दकल्पद्रुम' में श्लोकमय ग्रन्थ को साहित्य कहा गया है– मनुष्यकृतः श्लोकमयः ग्रन्थविशेषः साहित्यम् साहित्यं शब्द 'सहित' शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है परपस्पर मिला हुआ। **'सहित्यस्यभावः साहित्यम्'**[1] के आधार पर शब्द और अर्थ, विचार और भाव पारस्परिक अनुकूलता के साथ सहभाव ही साहित्य है। सहित शब्द के दो अर्थ है– साथ होना, हित के साथ होना। इन अर्थों की सिद्धि के लिए विश्वनाथ का चतुवर्गफलप्राप्तिः दृष्टनीय है। अल्पबुद्धि वालों को भी बिना किसी विशेष परिश्रम के सुख, चतुवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल प्राप्ति काव्य के ही द्वारा हो सकती है। रामायणादि काव्यों के पढ़ने से श्रीराम चन्द्रादि का अभ्युदय और रावणादि का सर्वनाश देखकर यह उपदेश मिलता है कि धर्म पर आरूढ़ रहने से अवश्य अभ्युदय होता है। जंगल के पशु–पक्षी तक भी मनुष्य की सहायता करते हैं एवं अधर्म करने के लिए कमर कसने से सगा भी छोड़ देता है और यदि इस धर्म फल की इच्छा का परित्याग कर दे तो मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि शुभ कर्मों के फल–त्याग और अशुभ कर्मों के अनाचरण से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।[2] इन पुरुषार्थों को जीवन में उतारने से मनुष्यता में श्री वृद्धि ही होगी। अतः साहित्य वही है जिससे मानव हित सम्पादित हो। साहित्यशास्त्र का दूसरा नाम काव्यशास्त्र भी है। भारतीय इतिहास के अनुसार आदि विद्वान ब्रह्मा ने समस्त शास्त्रों का प्रथम उपदेश किया था।[3] इसलिए विविध ग्रन्थ विषयक प्रवक्ता अपने शास्त्र के आदि प्रवक्ता के रूप में ब्रह्मा का निर्देश करते हैं। साहित्य समग्र वाङ्मय का पर्याय है। काव्य और साहित्य समानार्थक हैं। साहित्यशास्त्र पर लिखे हुए 'काव्यालंकार', 'काव्यालंकार सूत्र' 'काव्यादर्श' और काव्यप्रकाश आदि ग्रन्थों के नामों से स्पष्ट है कि कालान्तर में 'साहित्यशास्त्र' को ही 'काव्यशास्त्र' के नाम से जाना जाता है। इस दृष्टि से साहित्य शब्द के वास्तविक अर्थ का परिचालक 'काव्य' को समझना चाहिए। काव्य का अर्थ है– 'कवेः कर्मम्'अर्थात् कवि का कर्म। वर्णन में निपुण कवि का कर्म काव्य होता है। काव्य में शब्द और अर्थ के परस्पर समन्वय का परिणत फल होता है। तथा साहित्य में शब्द और अर्थ परस्पर स्पर्धा कर रमणीय होते हैं। शब्द और अर्थ की इस समपृक्तता को वैदिक साहित्य में भी विशेष स्थान दिया गया है। 'काव्यशास्त्र' पद का प्रयोग करने का सर्वप्रथम श्रेय 11वीं शताब्दी के 'सरस्वतीकण्ठाभरणम्' के रचयिता भोजदेव को जाता है। उन्होनें शास्त्र शब्द की विधि प्रतिषेधपरक 'शासनात् शास्त्रम्' इस व्युत्पत्ति को लेकर ही शास्त्र शब्द का प्रयोग उचित माना है।[4] संस्कृत साहित्य जगत् में विभिन्न अलंकारिकों ने काव्य का लक्षण अपने–अपने तर्कों के अनुसार प्रस्तुत किया है। क्रमशः'पदोच्चयो वाक्यं, वाक्योच्यः वाक्यानां समूहो वा महावाक्यम्।' यही महावाक्य काव्य कहा जाता है। और काव्यों में वृहत् आकार वाला महाकाव्य कहलाता है। हमारे संस्कृत वाङ्मय के मूर्धन्य विद्वानों ने काव्य की परिभाषाएँ अपने–अपने शब्दों में दी हैं। भरतमुनि ने 'रसः काव्यार्थः' कहकर रस को ही काव्य का प्रधान तत्व माना है। रुद्रट ने भी 'ननु शब्दार्थो काव्यम्' लक्षण लिखकर भामह के विचार का समर्थन किया है।[5] आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'[23] कहकर रसयुक्त वाक्य को काव्य कहा है। सबसे प्रधान होने के कारण रस ही जिसका जीवनभूत आत्मा है, वह वाक्य 'रसात्मक' कहलाता है। रस के बिना काव्यत्व सिद्ध नहीं होता। 'रस' अर्थात् लोकात्तर आनन्द जिस वाक्य में

प्राप्त हो, उसी को काव्य की संज्ञा प्राप्त है। कतिपय काव्य, मुक्तकों में ही पूरे हो जाते हैं। उनका दोष दिखलाने के लिए कहा गया है कि–

असंकलित रूपाणां काव्यानां नास्ति चारुता।
न प्रत्येकं प्रकाषन्ते तैजसाः परमाणवः।।[6]

अनिबद्ध काव्य कभी प्रकाशित नहीं होता है। अनिबद्ध (मुक्तक) काव्यों में चारुता नहीं आती है, जैसे अग्नि के प्रत्येक दैदीप्यमान परमाणु नहीं चमकते। विश्वनाथ ने काव्य का आधार रस और ध्वनि को माना है। इस कोटि में आने वाले अन्य विद्वान श्रीचण्डीदास ने 'काव्यप्रकाशदीपिका' में काव्य का लक्षण उल्लखित करते हुए कहा है कि **'आस्वादजीवातुः पदसन्दर्भः काव्यम्'**।[8] यहाँ शब्द को महत्वपूर्ण मानते हुए रस को काव्य जीवन माना गया है। भोजराज ने निर्दोष, गुणसहित, अलंकारों सेअलंकृत और रसयुक्त वाक्य को काव्य की संज्ञा देते हुए लिखा है–

निर्दोषं गुणवत्काव्यम् अलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।[9]

साहित्यशास्त्र के प्रारम्भ में विद्वानों ने शब्दार्थ को आधार मानकर काव्य लक्षण दिए हैं। जिनमें कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार उल्लखित हैं–साहित्यशास्त्र के सर्वप्रथम आचार्य भामहानुसार शब्द और अर्थ का सम्मिलित रूप काव्य है।'काव्यालंकार सूत्राणि' में 'वामन' के अनुसार 'सुन्दर' शब्दार्थ युग्म ही काव्य है'। अब प्रश्न है कि सुन्दरता का उपादान क्या है ? किन धर्मों से परिपूर्ण होने के उपरान्त वह शब्दार्थयुग्म में अविष्कृत होती है ? वामन इसका समाधान देते हैं कि 'दोषहान् तथा गुणालंकारादान्' से दोष काव्य का धर्म नहीं है। वह काव्य निष्पत्ति के पूर्व की अनुवीक्षा है। जिसमें परिहरणीय तत्वों का अवधान रखा जाता है। अतः अलंकार की निष्पत्ति में दोष नहीं, दोषहान् यानि दोषपरिहार सहायक है, और केवल सहायक है उपादान नहीं। गुण और अलंकार ही उपादान है।[10] काव्यलंकार सूत्राणि के प्रथम अध्याय में वामन लिखते हैं– **'काव्यं ग्राह्यम् अलंकारात्। काव्यं खलु ग्राह्यमुपादेयं भवति। अलंकारात्। काव्यषब्दोऽयं गुणाऽलंकारसंस्कृतयोः 'षब्दार्थयोः वर्तते। भक्त्या तु 'षब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते।'**[11] काव्य अलंकार के योग से ग्राह्य है। काव्य– शब्द, गुण तथा अलंकार से सुसंस्कृत शब्द और अर्थ का ही बोधक है। किन्तु लक्षणा से शब्दार्थ मात्र का बोधक काव्य शब्द यहाँ ग्रहण किया जाता है। रुद्रट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र ने वामन के काव्य लक्षण का समर्थन किया है। इनके परवर्ती विद्वान विश्वनाथ एवं जगन्नाथ ने शब्दार्थ युग्म रूपी काव्य लक्षण का खण्डन करने का यथासम्भव प्रयास किया है। 'काव्यप्रकाशकार' मम्मट नेतद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि लिखकर दोषरहित, गुण सहित और कहीं–कहीं अलंकार शून्य अथवा अस्फुटालंकार वाले शब्द और अर्थ को काव्य की संज्ञा दी है। कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवितम् में काव्य–लक्षण इस प्रकार दिया है–

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारषालिनी।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।।[12]

काव्य लक्षणों को ज्ञात करने के पश्चात् अब काव्य के प्रकारों को समझने का प्रयत्न करते हैं। काव्य विधा से तात्पर्य काव्य के भेदों से है। काव्यशास्त्र का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि काव्य मर्मज्ञों ने भिन्न–भिन्न आधारों पर काव्यभेदों के प्रकार परिगणित किए हैं–

1. **ध्वनि (व्यंगार्थ) के आधार पर–** इस आधार पर अनेक विद्वानों के अनेक भाव हैं। महिम भट्ट ने सब अध्वनियों का अन्तर्भाव अनुमान (अनुमेयार्थ में करते हुए काव्य का केवल एक भेद अनुमान माना है।) आनन्दवर्धन ने ध्वनिकाव्य गुणीभूत व्यंग्य काव्य तथा चित्रकाव्य में तीन भेद स्वीकार किए हैं। मम्मट ने काव्य भेद को क्रमशः उत्तम, मध्यम, और अधम काव्य कहा है। विश्वनाथ ने ध्वनिकाव्य और गुणीभूत व्यंग्यकाव्य में दो ही भेद माने हैं। पण्डितराज जगन्नाथ ने उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद स्वीकार किए हैं ।[13]

2. **स्वरूप के आधार पर–** काव्यलंकार के रचयिता भामह ने स्वरूप के आधार पर काव्य के पाँच भेद माने हैं, सर्गबन्ध (महाकाव्य) अभिनेय (रूपक) आध्यायिका तथा अनिबद्व ।[14]
3. **लेखन शैली के आधार पर–** इस आधार पर काव्य के गद्य, पद्य एवं मिश्र (चम्पू) तीन भेद हैं। विश्वनाथ ने गद्य को मुक्तक, उत्कालिका, वृत्तगन्धि और चूर्णक इन चार भागों में विभक्त करते हुए गद्य के 'कथा' एवं 'आख्यायिका' भेद स्वीकार किए हैं। पद्य के निबद्ध, अनिबद्ध भेद करते हुए निबद्ध को खण्डकाव्य एवं महाकाव्य में विभक्त किया है। खण्डकाव्य के पुनः मुक्तक, युग्मक, सन्दानितक, कलापक, कुलक भेद माने हैं। मुक्तक पद्य को स्रोत, नीति, श्रृंगारि में बाँटते हुए प्रबन्ध एवं मुक्तक नामक अन्तरिम भेद किए हैं।[15]
4. **विषय के आधार पर–** इस आधार पर काव्य के प्रकार का निर्धारण विषयवस्तु है। भामह ने प्रतिपाद्य विषय के अनुसार ख्यातवृत्त, कल्पित, कलाश्रित तथा शास्त्राश्रित ये चार भेद स्वीकार किए हैं।[16]
5. **इन्द्रियग्राह्यता के आधार पर–** इसमें काव्य की सभी विधाओं का समावेश करते हुए दो भेद माने गए हैं, प्रथम–दृश्य काव्य, इसके रूपक एवं उपरूपक नाम से दो भेद हैं। द्वितीय–श्रव्यकाव्य के गद्य, पद्य, चम्पू तीन भेद हैं।ध्वनि तथा विषय के आधार पर किया गया वर्गीकरण काव्य की सभी विधाओं पर प्रकाश डालने में अपेक्षाकृत कम सक्षम प्रतीत होता है। यह केवल काव्य के विविध रूपों पर ही प्रकाश डालता है। भामह द्वारा किया गया स्वरूप विधान वर्गीकरण इतना संकुचित है कि वह केवल श्रव्य एवं दृश्य काव्य भेदों में ही अन्तर्भूत हो जाता है। लेखन शैली के आधार पर किया गया वर्गीकरण भी स्वयं में अपूर्ण हैं। इन्द्रियग्राह्यता का आधार काव्य की सभी विधाओं को स्पष्ट करने में अधिक समर्थ प्रतीत होता है। इस प्रकार इन्द्रियग्राह्यता के आधार पर किया गया वर्गीकरण अधिक मान्य एवं पारदर्शी है।

महाकाव्य 'काव्य' का वृहद रूप है। जिस काव्य में जीवन की अनेक घटनाएँ सम्बद्व हो, विस्तार से वर्णित हो, वह प्रबन्धन काव्य की कोटि में आता है। यह आख्यान, वर्णन, संवाद, रस, नेता एवं महाकाव्यात्मक गठन तन्तुओं से सुसम्बद्व होता है। इसके विशाल कलेवर में सम्पूर्ण मानव समाज की समग्रता का एवं युग की समाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों का अभिराम चित्रण किया जाता है। महाकाव्य का नायक अपने चारित्रिक गुणों के कारण उच्च आदर्शों को प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन सामाजिकों एवं आने वाली पीढ़ियों का पर्थप्रदर्शक बनता है। काव्य की महाकाव्य विधा 'पुरुषार्थ चतुष्टयं' (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से एक पुरुषार्थ की सिद्धि–स्थापना का लक्ष्य रखती है। साहित्य शास्त्र में महाकाव्य के लक्षणों का परिचय महाकवियों के द्वारा इस प्रकार उल्लिखित है–

'काव्यालंकार' में **भामह** ने महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार दिए हैं–

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यषब्दमर्थ च सालंकारं सदाश्रयम्।।
मन्त्रदूतप्रयाणाजि नायकाभ्युदयं च यत्।
पंचभिः संधिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धियत्।।
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेषकृत।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैष्च सकलैः पृथक्।।
नायकं प्रागुपन्यस्य वंषवीर्यश्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।[17]

अर्थात् महाकाव्य सर्गबद्व होता है। महान चरित्रों का वर्णन होने से स्वयं भी महान होता है। उसमें ग्राम्य शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। शब्दार्थ सौष्ठव से सम्पन्न, अलंकारों से अलंकृत तथा सदाश्रित होना चाहिए। उसमें मन्त्रणा, दूतप्रेषण, अभिमान, युद्व, नायक का अभ्युदय तथा समृद्धि अर्थात् प्राकृतिक पदार्थों का रम्य वर्णन होना चाहिए। उसका कथानक नाटकीय पंचसन्धियों से समन्वित होना चाहिए। महाकाव्य कठिन व्याख्या योग्य स्थलों से रहित, चतुवर्ग का वर्णन होने पर भी अधिकांशतः 'अर्थ' के उपदेश से युक्त तथा लोकस्वभाव एवं सभी रसों से

समन्वित होना चाहिए। उसमें नायक का उत्कर्ष दिखाकर अन्य पात्र के उत्कर्ष के लिए नायक का वध नहीं कराना चाहिए। **'काव्यादर्ष'** में महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार दिए हैं–

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आषीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देषो वापि तन्मुखम्।।
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेत्तं चतुरोदात्तनायकम्।।
नगरार्णवषैलतुर्चन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः।।
विप्रलम्भैर्विवाहैष्च कुमारोदयवर्णनैः।
मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि।।
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः।।[18]

अर्थात् महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं– इसमें तीन प्रकार के आशीर्वादात्मक, नमस्क्रियात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरणों में से कोई एक मंगलाचरण प्रयुक्त होना चाहिए। इसकी कथा ऐतिहासिक या सज्जनों के आश्रय में होनी चाहिए। चारों वर्ग के फल की प्राप्ति का वर्णन होना चाहिए। धीरोदात्त गुणों से युक्त चतुर नायक होना चाहिए। नगर, पर्वत, चन्द्रोदय, सूर्योदय का वर्णन होना चाहिए। उद्यान, जलक्रीडा, मधुपान में निमग्न उत्सव, वियोग श्रृंगार, संयोग श्रृंगार, विवाहादि के साथ कुमारादि के जन्म का वर्णन होना चाहिए। मंत्रोच्चारण, दूतप्रयाण, नायक का अभ्युदय दिखाना चाहिए। महाकाव्य में सर्ग न तो अधिक बड़े न अधिक छोटे, श्रवण में मधुर होने चाहिए। **महाकवि रुद्रट** ने **'काव्यालंकार'** में काव्य के लक्षण इस प्रकार वर्णित किए हैं–

तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत् तद्नु तस्यां नायकवंषप्रषंसा च।।
तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धषक्तित्रयं च सर्वगुणम्।
रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषु नायकं न्यस्येत्
विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राज्यवृत्तं च।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादिं वर्णयेत्समयम्।।[19]

अर्थात् उत्पाद्य काव्यों के प्रारम्भ में सुन्दर नगरी, तत्पश्चात् उसमें नायक के वंश का वर्णन होना चाहिए। मन्त्र प्रभु कोषशक्ति से सम्पन्न, सभी गुणों से युक्त समस्त प्रजा को प्रिय विजय चाहने वाले राजा का उपन्यास होना चाहिए। सम्पूर्ण राज्य व राजधर्म का विधिवत् पालन करते हुए ऋतुओं का वर्णन होना चाहिए। **'साहित्यदर्पण'** में काव्य लक्षण इस प्रकार हैं–

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।।
सद्वंषः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंष भवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।
श्रृंगारवीरशान्तानामेकोंऽगी रस इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाषीर्वा वस्तुनिर्देष एव वा।।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कष्चन दृष्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाषैलर्तुवनसागराः।।
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः।।[20]

अर्थात् जहाँ कथा निबन्धन सर्गों में होता हो, देवता या सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय नायक होता है। जो धीरोदात्त लक्षणों से युक्त हो या एक वंश में उत्पन्न बहुत सारे नायक भी हो सकते हैं। श्रृंगार, वीर और शान्त में से एक रस प्रमुख होता है और सहायक के रूप में सुप्रधान बनकर अन्य रसों की उपस्थिति होती है। नाटक में कथित सभी सन्धियों (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण) का प्रयोग होता है। कथा इतिहास प्रसिद्व होती है या किसी सज्जन के आश्रय की कथा होती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुवर्ग में से एक वर्ग फल (काव्य का परिणाम) होता है। आदि में अपने इष्टादि को नमस्कार किया जाता है। ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण होता है। मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है– नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक। कहीं–कहीं दुर्जनों की निन्दा होती है और सज्जनों का गुणगान होता है। सम्पूर्ण सर्ग एक छन्द में लिखा जाता है, अन्त में छन्द परिवर्तित हो जाता है। यहाँ आठ से अधिक सर्ग होते हैं। ये सर्ग न तो बहुत छोटे होते हैं और न अत्यधिक बड़े होते हैं। कहीं–कहीं सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग होता है। सर्ग के अन्त छन्द में, अग्रिम सर्ग की कथा को सूचित किया जाता है। सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, शिकार, ऋतु, वन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, मार्ग, रणप्रयाण, उपयम (विवाह) मन्त्र, पुत्रोत्पत्ति आदि का वर्णन यथा सम्भव सांगोपांग होता है। इसका नाम कवि के नाम से या चरितनायक के नाम से या कहीं इसके अतिरिक्त आधार पर भी रखा जाता है। ऋषि प्रणीत काव्यों में सर्ग का नाम आख्यान होता है। इस प्रकार आचार्य भामह, दण्डी, रुद्रट और विश्वनाथ के द्वारा प्रदत्त महाकाव्य के लक्षणों के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि–

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होता है।
2. महाकाव्य आठ या आठ से अधिक, न अति न्यून न अति विस्तीर्ण सर्गों से युक्त होना चाहिए।
3. प्रायः प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होता है और सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन उचित है। कहीं–कहीं किसी सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में भावी कथा की सूचना देनी चाहिए।
4. प्रत्येक सर्ग के अन्त में भिन्न छन्द का प्रयोग होने से काव्य लोकरंजन तथा स्थायी होता है।
5. इसका नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त, किसी दिव्य अथवा क्षत्रिय कुलोत्पन्न राजा होना चाहिए। एक वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी इसके नायक हो सकते हैं।
6. महाकाव्य में शान्त, वीर, श्रृंगार इन तीन रसों में से किसी एक का मुख्य रस तथा अन्य सभी रसों का उसके अंग के रूप में चित्रण होना चाहिए।
7. महाकाव्य सभी नाट्यसंधियों से युक्त रहता है। उसका कथानक किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध अथवा इतिहास प्रसिद्ध होता है।

8. इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से कोई एक फल उद्देश्य रूप में होना चाहिए। यहाँ पर दण्डी चारों फलों की प्राप्ति को महाकाव्य का लक्ष्य निर्धारित करते हैं। वहीं विश्वनाथ ने इस लक्षण में उदारता दिखाकर किसी एक की आवश्यकता ही दिखायी है।
9. महाकाव्य के मध्य में आवश्यकतानुसार समुद्र, पर्वत, वसन्तादि, ऋतुओं, सूर्योदय, सन्ध्या, सूर्यास्त, जल–क्रीडा, मधुपान, रतिक्रीडा, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय, युद्धों, यात्राओं इत्यादि का वर्णन होता है।
10. महाकाव्य अलंकृत विस्तृत तथा रसभाणादि से समन्वित होता है।
11. महाकाव्य के प्रारम्भ में मंगलत्रय में से अन्यतम का निबन्धन अर्थात् आरम्भ में नमस्कार, आशीर्वचन अथवा मुख्यकथा का सूचक मंगलाचरण होना चाहिए, इसमें कहीं–कहीं दुष्टों की निंदा तथा सज्जनों की प्रशंसा होती है। मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है–

क. नमस्कारात्मक **ख. आषीर्वादात्मक** **ग. वस्तुनिर्देषात्मक**

12. महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा सज्जन पुरुष के चरित्र से सम्बद्ध होना चाहिए। दण्डी और साहित्यकार विश्वनाथ के पश्चात् रुद्रट, हेमचन्द्र आदि ने भी महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन किया है।
13. मुख्य घटना, चरित्र अथवा मुख्यपात्र के आधार पर काव्य का नामकरण होता है।[21]

उल्लिखित आवश्यक बिन्दुओं के आधार पर महाकाव्य हेतु आवश्यक लक्षणों का चयन कर कोई भी कवि अपने काव्य का सृजन कर सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ–सूची

1. संस्कृत साहित्य एवं काव्यशास्त्र पृ0सं0 88
2. साहित्यदर्पण पृ0सं0 07, 08, 09
3. संस्कृत व्याकरण साहित्य का इतिहास भाग–एक पृ0सं0 59
4. संस्कृत साहित्य एवं काव्यशास्त्र पृ0सं0 87
5. गंगापुत्रावदानम् पृ0सं0 36
6. साहित्यदर्पण पृ0सं0 19
7. हिन्दी काव्यालंकारसूत्राणि पृ0सं0 41
8. संस्कृत साहित्य एवं काव्यशास्त्र पृ0सं0 88
9. संस्कृत साहित्य एवं काव्यशास्त्र, पृ0सं0 88, 89
10. काव्यालंकारसूत्राणि पृ0सं0 34
11. काव्यालंकारसूत्राणि, पृ0सं0 03
12. वक्रोक्तिजीवितम् प्रथमोन्मेष 1/7
13. व्यक्तिविवेक पृ0सं0 1, ध्वन्यालोक 3/37
14. काव्यालंकार भामह 1/18
15. साहित्यदर्पण 6/330, 314
16. काव्यालंकार भामह 1/17
17. काव्यालंकार भामह 1/19–30
18. दण्डी काव्यादर्श 1/14–18
19. काव्यालंकार रुद्रट 16/5–7
20. साहित्यदर्पण 6/315–325
21. साहित्यदर्पण पृ0सं0 225